पीपली-सांवला। आध्यात्मिक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए सरपंच एवं ब्र.कु. प्रेरणा, ब्र.कु. रेखा तथा अन्य।

पोखरा-नेपाल। प्रमुख जिलाधिकारी यादव प्रसाद कोइराला को ईश्वरीय सौगात देते हुए ब्र.कु. परिणीता।

Raiah Mundry:- Bk Bharat Bhushan Addressing to the

राजाह मुंडरी। जी.एस.एल. मेडिकल कॉलेज की छात्राओं को परमात्म-परिचय देते हुए ब्र.कु. भारत भूषण।

हिराकूद। प्रिंसीपल विपिन बिहारी आचार्य को ओमशान्ति मीडिया पत्रिका भेंट करते हुए ब्र.कु. बिंदू एवं डॉ. रामचरण प्रधान।

रवनौरी-पातड़ा। विवेकानन्द जयंती के अवसर पर शोभायात्रा का शुभारम्भ करते हुए ब्र.कु. निशा एवं ब्र.कु. किरण साथ में नगर कोंसिल के प्रधान रामनिवास तथा अन्य।

सिरसा। कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए ब्र.कु. सुभाष, श्रीमति राधा रानी मेहता समाज सेविका, ब्र.कु. अमीरचन्द, ब्र.कु. पुष्पा, ब्र.कु. अनीता तथा भा.ज.पा. प्रदेश उपाध्यक्ष जगदीश चोपड़ा।

ज्ञान का दर्शन

चेतना चेतना है। वह ज्ञान को पैदा करती है। दर्शन ज्ञान को जन्म देता है। दर्शन से ज्ञान उत्पन्न होता है। दर्शन होता है तब ज्ञान होता है। यदि दर्शन न हो, ज्ञान नहीं हो सकता। सबसे पहले हमारी चेतना का व्यापार दर्शन होता है। आदमी चलता है। सामने कोई दूसरा आदमी आता है, सबसे पहले देखता है। देखने के बाद मन में फिर विकल्प उठता है। पहले कोई विकल्प नहीं होता। पहले केवल देखता है। ध्यान से देखता है, फिर विकल्प पैदा होते हैं। वस्तु को देखें, किसी व्यक्ति को देखें या किसी घटना को देखें, किसी को भी देखें, पहले विचार शून्यता की अवस्था होगी, फिर विकल्प-दशा होगी। देखने के बाद फिर विकल्प चालू होते हैं। फिर विकल्पों को तांता लगता है। यह कौन है? आदमी है। कहां का है? वेश-भूषा कैसी है? कहां से आया है? क्या इससे बात करें? इससे पूछें? इससे सम्पर्क स्थापित करें? नाना प्रकार के विकल्प पैदा होते हैं। और विकल्पों का जाल बिछ जाता है। ये सब दर्शन के पश्चात् होते हैं। पहले केवल दर्शन होता है। हम प्रेक्षा को इतना मूल्य क्यों देना चाहते हैं? प्रेक्षा का मूल्य क्यों है?

इसलिए कि हमारी सारी समस्याएं ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होती हैं। और यदि हम समस्याओं का समाधान चाहते हैं, तो हमें दर्शन की भूमिका पर जाना होगा। हमारी सारी कठिनाइयां ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होती हैं। हम उन कठिनाइयों को समाप्त करना चाहें, तो हमें दर्शन की भूमिका पर जाना होगा। हमारे सारे मानसिक तनाव ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होते हैं। यदि हम मानसिक तनावों से बचना चाहते हैं, तो हमें दर्शन की भूमिका पर जाना होगा। हमारी शक्तियां बहुत क्षीण होती हैं। यदि हम शक्तियों को सुरक्षित रखना चाहते हैं, संचित रखना चाहते हैं, शक्ति-संचय को समाप्त करना नहीं चाहते तो हमें दर्शन की भूमिका पर जाना होगा। दर्शन में केवल अस्तित्व हमारे सामने होता है, कोरा अस्तित्व। और जहां कोरा अस्तित्व होता है वहां शक्ति का व्यय नहीं होता। ज्ञान में अस्तित्व गौण हो जाता है और विकल्प प्रधान बन जाता है। वहां मन की शक्ति खर्च होती है, वाणी की शक्ति खर्च होती है, शरीर की शक्ति खर्च होती है और नाड़ी-संस्थान की शक्तियां खर्च होती हैं। शक्ति-व्यय को रोकने के लिए ज्ञान की भूमिका से हटकर दर्शन की भूमिका में जाने की कला हमें सीखनी होगी।

प्रयोजन का मूल्य

मालवीय जी एक धनपति के पास गए। बड़ा धनपति था। धनपति ने सत्कार किया, पंड़ित मदनमोहन मालवीय घर पर आए हैं, बड़ा सम्मान किया। पास में बैठाया। देखते है कि बच्चा खेल रहा है। दियासलाई की पेटी हाथ में है। एक दियासलाई निकालता है, जलाता है और एक लकड़ी को जला देता है। सेठ ने बीच में ही उठकर बच्चे को एक चांटा मार दिया। अपना लड़का, प्यारा लड़का। सेठ फिर आकर बैठ गया। मालवीय जी बोले—'अब मैं जा रहा हूँ।' सेठ बोला—'आप क्यों आए थे? और क्यों जा रहे हैं? आने का कोई प्रयोजन आपने नहीं बताया? आप किसलिए वापस जा रहे हैं? मालवीय जी ने कहा—'आया था प्रयोजन से, पर अब मैं कहना नहीं चाहता। मन में सोचा था कि हिन्दू विश्व विद्यालय बन रहा है। तुम्हारे पास बड़ा चन्दा लेने की आशा से आया था, किंतु तुम तो इतने कृपण हो कि एक लकड़ी जला देने पर बच्चे को तुमने चांटा मार दिया। तुम मुझे क्या चंदा दोगे?' सेठ ने तत्काल पचास हजार का चैक दे देया। मालवीय जी समझ नहीं पाये कि यह क्या? वे बोले—सेठजी! तुम्हारे बारे में मेरे मन में एक भावना बन गई थी कि जो व्यक्ति एक लकड़ी जला देने के कारण बच्चे को चांटा जड़ देता है, वह क्या चंदा देगा? सेठ बोला–'आप इस बात को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। व्यर्थ नुकसान मैं एक पाई का भी नहीं कर सकता और जहां प्रयोजन हो वहां पचास हजार भी दिया जा सकता है। और एक लाख भी दिया जा सकता है।' मालवीयजी उसकी बात सुनकर आश्चर्यचकित रह गये।

शक्ति का निरर्थक खर्च

यह बहुत बड़ा निदर्शन है, दर्शन है। आदमी व्यर्थ में ही शक्ति को बहुत खर्च करता है। शक्ति को जलाता रहता है। एक दियासलाई जलाई और एक लकड़ी जलाई। एक लकड़ी ही नही जलती, फिर लकड़ियां ही जलती चली जाती हैं। हम अपनी शक्ति का कितन अपव्यय करते हैं, लाभ कुछ भी नहीं उठाते। जहां लाभ मिले, कोई फल मिले, शक्ति का व्यय हो तो बात समझ में आती है। शक्ति केवल रखने के लिये नहीं होती, केवल भण्डाा में पड़े रहने के लिए नहीं होती, शक्ति उपयोग के- लिए होती है, किंतु जहां शक्ति का उपयोग न हो और निकम्मा खर्च हो, वह बात एक पैसे की भी सहन नहीं हो सकती। कोई भी समझदार व्यक्ति इस बात को सहन नहीं करता कि व्यर्थ में शक्ति का एक कण भी उपयोग में - शेष 4 पृष्ठ पर...

तीन प्रकार के कर्म व तपस्याएं

राजसिक मनुष्यों का आहार कैसा होता है? मनुष्य जैसा अन्न खाता है। उसी का प्रभाव उसके मन के विचारों पर पड़ता है। तीखे, खट्टे, खारे, बहुत गर्म, चटपटे, रूखे, बहुकारक आहार दु:ख और शोक तथा क्रोध उत्पन्न करने वाले होते हैं। ये राजसिक आहार हैं।

तामसिक आहार किसको कहते हैं? प्रहर भर से पड़ा हुआ अर्थात् रात का बासी अन्न स्वीकार करना। सुबह को बचाके रखना और दूसरे दिन उसे स्वीकार करना है। प्रहर भर से पड़ा हुआ, नीरस (जिसके अंदर एक प्रकार की दुर्गंध आ गयी हो), बासी है, अपवित्र अर्थात् जानवरों को मारकर के उसका आहार, इसको कहा जाता है, तामसिक भोजन।

व्यक्ति जैसा भोजन खाता है, वैसी अपनी प्रकृति का निर्माण करता है। इसलिए व्यक्ति की प्रकृति या सात्विक या राजसिक या तामसिक होती है। या उसके साथ वो जिस प्रकृति को रचता है, जिस प्रकार के बच्चों को वह जन्म देता है उसका आधार उसका आहार होता है। जैसा भोजन खाया है वैसी प्रकृति की ही तो रचना होगी। फिर उस रचना से दु:खी हो जाते हैं और सोचते हैं कि भई ऐसी रचना कहां से आ गयी? इसलिए अगर अपनी प्रकृति को, अपनी रचना को अच्छा बनाना चाहते हो, तो उसके लिए भोजन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कई माता-पिता की यह शिकायत बनी रहती है अपने बच्चों के प्रति, कि हमारी रचना ऐसी है। किस तरह से इन्हें वश किया जाए, नियंत्रण में लाया जाये। श्रीमद्भगवतद् गीता में, इसका उत्तर प्राप्त होता है। उस रचना को कंट्रोल करने के लिए भी उसको वैसा भोजन प्रदान करना जरूरी है, ताकि उसकी प्रकृति में भी परिवर्तन आ जाए।

तीन प्रकार के यज्ञ कर्म होते हैं। उसमें सात्विक यज्ञ कर्म, उसे कहा

गीता ज्ञान का आध्यात्मिक रहस्य

-वरिष्ठ राजयोग शिक्षिका, ब्र.कु.उषा

जाता है जिसमें फल की इच्छा नहीं हो। जो विधि पूर्वक कर्त्तव्य समझकर निश्चयात्मक बुद्धि से होता है। वह यज्ञ सात्विक है। परंतु जो भौतिक लाभ के लिए है, या दम्भ से होता है, वह यज्ञ राजसी होता है। जिसमें विधि ही नहीं है। लोक कल्याण की भावना नहीं, त्याग नहीं, श्रद्धा नहीं वह यज्ञ, तामसी यज्ञ माना जाता है। इस प्रकार से तीन प्रकार के यज्ञ और फिर तीन प्रकार की तपस्यायें हैं।

तीन प्रकार की तपस्याओं में भी एक तो शरीर संबंधी तपस्या, दूसरी वाणी की तपस्या और तीसरी है मन की तपस्या। तीन प्रकार की तपस्या को स्पष्ट करते हुए उसमें सात्विक, राजसिक, तामसिक भावनाओं का स्पष्टीकरण भगवान देते हैं।

जहां देव, द्विज, गुरू और ज्ञानीजनों की आराधना, बाह्य शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा है- ये शरीर संबंधी तपस्या है। जो वाक्य सच्चे हैं, प्रिय है, हितकर है, ज्ञानयुक्त है, मधुर है, वह वाणी का तप है। इसलिए कई बार दुनिया में भी कहा जाता है कि जैसी वाणी वैसा वर्ण। अर्थात जिस क्वालिटी की वाणी मनुष्य बोलता है, उससे पता चलता है कि वह किस वर्ण का है। शरीर या जन्म से भले ही कोई भी वर्ण हो लेकिन संस्कारों से पता चलता है कि ये किस वर्ण का है। ये है वाणी की तपस्या है। परमात्मा ने वाणी के लिए कितने सुंदर दो दरवाजे दिए है। एक तो जिह्वा वह अपनी चंचलता न मचाती रहे, इसलिए उसे बत्तीस दांतों के बीच में रखा और दूसरा होंठों का दरवाजा है। अर्थात् जो बोले उसके पहले सोच-समझकर बोलें। इसलिए ये दो दरवाजे दिए हैं। साथ में तीन सिपाही दिए गए हैं कि जब भी बोलने का मन हो तो पहले सोचो। जो बोलने जा रहा हूँ, वह समयानुसार उचित है। कई बोल अच्छे होते हैं लेकिन समयानुसार नहीं होते हैं। पहले ये देखो कि उचित समयानुसार ये बोल है। दूसरा सिपाही हमें ये कहता है कि क्या जो तुम बोलने जा रहे हो वह सत्य, मधुर और हितकर है। तीसरा जो बोलने जा रहे हो, क्या इस वक्त जरूरी है बोलना? अगर ये तीनों सही है, तो फिर भले बोला। क्योंकि उसमें नुकसान नहीं होगा। लेकिन अगर उचित समय नहीं है, जरूरी नहीं है, तो बिना बोले और भी अच्छी तरह से कार्य हो सकता है। अगर वो वचन कड़वे हो, सीधे हो, हितकर न हो, कल्याण की भावना युक्त न हो और ज्ञान-युक्त न हो, तो भी कई बार नुकसान कर देते हैं।

- क्रमश: